National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(59): 266-270
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ० दीपक कुमार पाठक
सहा० आचार्य संस्कृत,
नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत-२८४४०३

Correspondence:
डॉ० दीपक कुमार पाठक
सहा० आचार्य संस्कृत,
नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत-२८४४०३

बौद्ध साहित्य में कृषि व कृषक : एक शोधात्मक अध्ययन

डॉ० दीपक कुमार पाठक

सारांश (Abstract)

प्राचीन भारतीय समाज की आर्थिक संरचना में कृषि का केंद्रीय स्थान था। बौद्ध साहित्य—विशेषतः सुत्तपिटक, विनयपिटक तथा जातक—में कृषि, कृषक, भूमि-अधिकार, कर-प्रणाली, सिंचाई, बीज-चयन तथा ग्रामीण जीवन के बहुआयामी संदर्भ उपलब्ध होते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में बौद्ध साहित्य में वर्णित कृषि-व्यवस्था और कृषक-जीवन का ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध परंपरा ने कृषि को लोकजीवन का अनिवार्य आधार माना, किंतु साथ ही अहिंसा और संयम के सिद्धांतों के कारण भिक्षु-संघ को प्रत्यक्ष कृषि-कार्य से विरत रखा। इस प्रकार बौद्ध दृष्टि में कृषि एक सामाजिक-आर्थिक यथार्थ है, परंतु आध्यात्मिक साधना के स्तर पर उससे वैराग्य का संकेत भी निहित है।

शब्द कुंजी (कीवड्र्स): बौद्ध साहित्य, कृषि, कृषक, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, जातक, विनयपिटक, प्राचीन भारत।

भूमिका

भारत की प्राचीन सभ्यता मूलतः कृषि-प्रधान रही है और यह तथ्य वैदिक से लेकर बौद्ध साहित्य तक सतत प्रतिपादित होता है। पालि त्रिपिटक में ग्रामीण जीवन, कृषक-समाज तथा उत्पादन-व्यवस्था के अनेक संकेत प्राप्त होते हैं। विनयपिटक में भिक्षुओं के वर्षावास, ग्राम-निवास तथा दान-व्यवस्था का उल्लेख इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि संघ का जीवन ग्रामीण अर्थव्यवस्था से घनिष्ठ रूप से संबद्ध था। इसी प्रकार दीर्घनिकाय में समाज की उत्पत्ति-वर्णना के प्रसंग में 'साली' (धान) की खेती, भूमि-विभाजन तथा निजी स्वामित्व का उल्लेख मिलता है—**"सालिस्सं उपट्ठासि..."**[1] —जिससे स्पष्ट है कि कृषि उत्पादन सामाजिक संगठन का आधार बन चुका था। अंगुत्तरनिकाय में गृहस्थ के चार प्रकार के सुखों में '**अत्तभोगसुख**' (उपार्जित धन का उपभोग) का वर्णन है, जो कृषि-आधारित आजीविका की स्वीकृति को दर्शाता है।[2] संस्कृत साहित्य परंपरा में ललितविस्तर तथा दिव्यावदान में ग्राम्य-जीवन, खेत, गोपालन एवं अन्न-समृद्धि के उल्लेख तत्कालीन आर्थिक संरचना का संकेत देते हैं। इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि बौद्ध साहित्य केवल आध्यात्मिक विमर्श नहीं, अपितु कृषि-आधारित समाज का सामाजिक-आर्थिक दर्पण भी है।

बुद्ध का जन्म यद्यपि क्षत्रिय कुल में हुआ, तथापि उनके उपदेशों में कृषक, वणिक्, श्रमिक और सामान्य गृहस्थ के जीवन को विशेष महत्त्व प्राप्त है। गौतम बुद्ध ने 'सम्यक् आजीव' को अष्टाङ्गिक मार्ग का अंग बताते हुए नैतिक उपार्जन पर बल दिया, जो कृषि सहित शुद्ध श्रम-आधारित व्यवसायों की मान्यता को प्रकट करता है।[3] सुत्तनिपात में बुद्ध और कृषक भारद्वाज के संवाद में कृषि-रूपक के माध्यम से आध्यात्मिक साधना की व्याख्या की गई है—**"सद्धा बीजं, तपो वुट्ठि..."**[4] यह दर्शाता है कि कृषि-

प्रतीक तत्कालीन समाज के लिए अत्यंत स्वाभाविक और बोधगम्य थे। भिक्षु-संघ की भिक्षावृत्ति प्रत्यक्षतः ग्राम्य-समाज पर आश्रित थी; महावग्ग (विनयपिटक) में वर्षावास और पिण्डपात-विधान से यह सिद्ध होता है कि दान का प्रमुख स्रोत कृषक-गृहस्थ थे। इस प्रकार पालि एवं संस्कृत बौद्ध ग्रंथों के आधार पर कहा जा सकता है कि कृषि न केवल आर्थिक आधार थी, बल्कि बौद्ध नैतिकता, प्रतीक-चिन्तन और संघ-व्यवस्था की जीवनरेखा भी थी।

बौद्ध साहित्य का संक्षिप्त परिचय

बौद्ध साहित्य को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जाता है—

1. **त्रिपिटक** (विनयपिटक, सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक)
2. **जातक साहित्य**
3. **उत्तरकालीन बौद्ध ग्रंथ** (अवदान, ललितविस्तर, महावस्तु आदि)

इन ग्रंथों में धार्मिक उपदेशों के साथ-साथ तत्कालीन समाज की सामाजिक, आध्यात्मिक, आर्थिक गतिविधियों का वर्णन है, जिसमें कृषि प्रमुख है।

कृषि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

बुद्ध के काल में मगध, कोसल, वैशाली और अन्य महाजनपद कृषि-प्रधान थे। गंगा-यमुना मैदानों की उपजाऊ भूमि, नदियों का प्रचुर प्रवाह और लोहे के हल व उपकरणों का प्रयोग कृषि के विकास का आधार बने। जातक कथाओं में स्पष्ट रूप से ग्रामीण जीवन और कृषक का श्रम चित्रित है। **"अन्नकस्सक जातक"** में कहा गया है— **"हलः, बैलः, खेतः, मेड़ः, बीजः, वर्षा च फसलः लोकस्य जीवनाधारः।"[5]** अर्थात यह स्पष्ट करता है कि कृषक के द्वारा हल चलाना, बैल का प्रयोग, खेत की मेड़ बनाना, बीज बोना और वर्षा पर निर्भर फसल उगाना सामान्य जीवन का अविभाज्य अंग था।

विनयपिटक में भी कृषि-उत्पादन का संकेत मिलता है, जहाँ भिक्षुओं को प्रत्यक्ष खेती से विरत रहने का निर्देश दिया गया है। **"भूमिः सर्वजनजीवनाय आवश्यकः, कृषकः अन्नस्य प्रदाता"[6]** अर्थात यह सामाजिक-आर्थिक तथ्य प्रतिष्ठित किया गया है। इन ग्रंथों से स्पष्ट होता है कि कृषि केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना और ग्रामीण जीवन की नींव थी, और बौद्ध साहित्य इसे लोकजीवन तथा नैतिक-आध्यात्मिक विमर्श के सन्दर्भ में लगातार उद्धृत करता है।

बुद्धकालीन सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

बुद्धकाल (ईसा पूर्व 6वीं– 5वीं शताब्दी) में गंगा-यमुना दोआब और मगध क्षेत्र में कृषि का व्यापक विकास हुआ था। स्थायी ग्रामों की स्थापना, लोहे के हल और अन्य कृषि उपकरणों का प्रयोग, तथा सिंचाई व्यवस्था की प्रगतिशील तकनीकें इस काल की विशेषताएँ थीं। बौद्ध साहित्य में इस यथार्थ का स्पष्ट प्रतिबिंब मिलता है। जातक में स्थायी ग्राम, खेत, तालाब, और सिंचाई के विवरण आते हैं। **"सेवककस्सकं क्षेत्रं तु सम्यक् उपजायति"[7]**— अर्थात् एक परिश्रमी कृषक अपने खेत से समुचित अन्न प्राप्त करता है। इसी प्रकार विनयपिटक में भी भिक्षुओं के लिए प्रत्यक्ष कृषि कार्य निषिद्ध किए जाने का कारण स्पष्ट है, जो अहिंसा और जीवहानि से संबंधित है[8], जिससे यह ज्ञात होता है कि कृषि सामाजिक जीवन का अनिवार्य आधार था।

कृषक वर्ग उस समय समाज का सबसे बड़ा वर्ग था, और राज्य का मुख्य आयस्रोत कृषि कर (बलि) था। बौद्ध साहित्य में भूमि माप और कराधान के संकेत कई स्थानों पर मिलते हैं। **"क्षेत्रफलस्य षष्ठांशं राज्ञा बलि रूपेण दत्तम्"[9]** अर्थात् खेत के उत्पादन का छठा हिस्सा राजा को कर रूप में दिया जाता था। इसी प्रकार **"अस्मिन्नेव ग्रामे कृषकः स्वकीयकर्मणा सम्पदं आगच्छति"[10]** जैसी कथाएँ दर्शाती हैं कि कृषक न केवल आर्थिक उत्पादन में योगदान देते थे, बल्कि राजकीय नियंत्रण और सामाजिक व्यवस्था में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस प्रकार, बौद्ध साहित्य और पालि सूत्र मिलकर बुद्धकालीन सामाजिक-आर्थिक संरचना, कृषक जीवन और कृषि पर निर्भर राजकीय आर्थिक व्यवस्था का प्रामाणिक विवरण प्रदान करते हैं।

बौद्ध ग्रंथों में कृषि

सुत्तपिटक में कृषि

सुत्तपिटक में "कस्सक" (कृषक) शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। कस्सक सुत्त में बुद्ध और एक कृषक के संवाद का वर्णन है। कृषक बुद्ध से पूछता है कि वे बिना हल चलाए अन्न कैसे प्राप्त करते हैं। बुद्ध उत्तर देते हैं— **"सद्धा बीजं, तपो वस्सो, पञ्ञा मे युगनंगलं।"[11]** अर्थात श्रद्धा मेरा बीज है, तप मेरा वर्षा है, और प्रज्ञा मेरा हल है। यहाँ कृषि को आध्यात्मिक रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

विनयपिटक में कृषि

विनयपिटक में भिक्षुओं के लिए प्रत्यक्ष कृषि-कार्य निषिद्ध किया गया है, क्योंकि भूमि-उत्खनन में जीव-हिंसा की संभावना है। विनय नियमों में कहा गया है कि भिक्षु बीज बोने या खेत जोतने का कार्य न करें। इससे स्पष्ट है कि कृषि सामाजिक जीवन का अंग थी, परंतु संन्यासियों के लिए उपयुक्त नहीं मानी गई।

जातक साहित्य में कृषक जीवन

जातक में ग्रामीण जीवन का अत्यंत सजीव चित्रण है।

- हल चलाते किसान
- वर्षा की प्रतीक्षा
- पशुपालन
- खेत की रक्षा
- कर-भुगतान

इन कथाओं से कृषक के श्रम, आशा, संघर्ष और सामाजिक स्थिति का बोध होता है।

कृषि की अवधारणा बौद्ध साहित्य में

बौद्ध साहित्य में कृषि को धर्मसम्मत आजीविका के रूप में स्वीकार किया गया है। **सम्मा आजीव** के अंतर्गत कृषि का उल्लेख स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। अंगुत्तरनिकाय में वर्णित **"सम्मा आजीवो नाम कृषिकम्मं, वणिज्जा, गोपालनं"**[12] अर्थात सम्यक आजीविका के रूप में कृषि-कर्म, व्यापार और पशुपालन स्वीकार्य हैं। यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि बुद्ध कृषि को नैतिक रूप से अनुमोदित जीवन-यापन का साधन मानते हैं।

कस्सक सुत्त (संयुक्तनिकाय) में कृषक के अनाथक श्रम और धैर्य की प्रशंसा करते हुए कहा गया है— **"कस्सको बहुं दुक्खं सहति, ततो सुखं पच्छा लभति"**[13] अर्थात कृषक अपनी फसल प्राप्त करने से पहले अनेक दुःख सहता है, तत्पश्चात उसे सुख प्राप्त होता है। यह कथन कृषि को परिश्रम-साध्य कर्म के रूप में स्थापित करता है।

कृषक का सामाजिक स्थान

बौद्ध साहित्य में कृषिकर्म को अन्य कार्यों से कमतर नहीं माना जातं था। कृषक को समाज में का तुच्छ अंग नहीं माना गया, अपितु उसे अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ स्वीकार किया गया है। जातक साहित्य में कृषक न केवल परिश्रमी अपितु नैतिक मूल्यों के संवहन से युक्त पात्र के रूप में चित्रित होता है। सुत्तनिपात के कसिभारद्वाज सुत्त में कृषक और बुद्ध का संवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

कृषक**:**"अहं कसामि, भगवा, कसिं कसित्वा फलं पच्छामि" अर्थात हे भगवन्! मैं खेती करता हूँ, खेत जोतकर फल प्राप्त करता हूँ।

इसके प्रतिउत्तर में बुद्ध कहते हैं— "सद्धा बीजं, तपो वुट्ठि, पञ्ञा मे युगनङ्गलं" अर्थात मेरी श्रद्धा बीज है, तपस्या वर्षा है और प्रज्ञा मेरा हल है।

जातक साहित्य में कृषि जीवन

जातक कथाएँ बौद्ध साहित्य का एक प्रमुख भाग हैं, जिनमें बुद्ध के पूर्वजन्मों और तत्कालीन समाज के जीवन का सूक्ष्म चित्र मिलता है। विशेषकर कृषि जीवन का विवरण विस्तृत है। इन कथाओं में कृषक पात्रों का दैनिक जीवन, खेत की तैयारी, फसल की देखभाल, हल चलाना, बैलों का उपयोग, वर्षा और सूखे की अनिश्चितताएँ, फसल भंडारण, ऋतु चक्र के अनुसार कृषि क्रियाएँ, कृषक का सामाजिक और धार्मिक सम्मान, तथा नैतिक गुणों का प्रभाव दर्शाया गया है।

कृषक और हल

हल कृषि का मुख्य उपकरण था और बैलों के साथ उसका उपयोग अपरिहार्य था। जातक कथाओं में हल की गुणवत्ता, भूमि की तैयारी, बीज बुवाई और फसल की रक्षा का विशेष उल्लेख मिलता है। **महाकपि जातक** में कृषक का हल चलाना और खेत की तैयारी का वर्णन है— **"कसिको हलं धारयित्वा खेतं जोति"**[14] अर्थात कृषक हल उठाकर खेत जोतता है।

बैल और पशुपालन

बैल न केवल हल खींचने के लिए बल्कि खाद और जल परिवहन में भी प्रयोग किए जाते थे। जातक कथाएँ यह भी दर्शाती हैं कि पशुपालन कृषि जीवन का अभिन्न अंग था। **कुलावक जातक** में बैलों का उल्लेख उनके कार्य और महत्व के लिए किया गया है— **"गोणयुगं कार्ये उपयोजयति"**[15] **अर्थात** कृषक कार्य में बैलों की जोड़ी का उपयोग करता है।

फसल, वर्षा और सूखा

जातक कथाओं में फसल के प्रकार, बुवाई और कटाई के समय, तथा सूखा और अतिवृष्टि के प्रभावों का विवरण मिलता है। इससे तत्कालीन कृषक जीवन की अस्थिरता और उसकी धैर्यशीलता का पता चलता है। **दुब्बलकट्ठ जातक** में वर्षा की अनिश्चितता और फसल की चिंता का विवरण मिलता है— **"वर्षा न सम्पत्ते, कृषको दुःखं अनुभवति"**[16] अर्थात वर्षा न होने पर कृषक दुःख का अनुभव करता है।

कृषि भंडारण और विपणन

जातक कथाओं में फसल की भंडारण तकनीक और विपणन का भी उल्लेख मिलता है। अनाज और अन्य उपज को सुरक्षित रखने के लिए भंडारों का निर्माण, खेत से घर तक परिवहन और कभी-कभी बाजार में व्यापार का संकेत मिलता है। **"अन्नं सुरक्षितं गृहे स्थापयति**[17] अर्थात वह फसल को सुरक्षित रूप से घर में संग्रह करता है। इसी प्रकार जातक निकाय भाव में तथागत कहते हैं कि **"अन्नसंचय, कालवीपत्तिम पञ्चककित्वा"**[18] अर्थात हे कृषक आपत्ति को ध्यान में रखकर अन्न का संग्रह करना चाहिए।

कृषि और नैतिकता

जातक कथाओं में कृषक न केवल परिश्रमी, बल्कि नैतिक गुणों से युक्त चरित्र के रूप में प्रस्तुत होता है। बौद्ध साहित्य में कृषक का परिश्रम और उसका सामाजिक जीवन केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं, बल्कि नैतिक आदर्शों के पालन के रूप में भी महत्व रखता है। संस्कृत रूप में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **"कस्सको धर्मं अनुगच्छति, लोभं त्यजति, संतोषं करोति।"[19]** अर्थात कृषक धर्म का पालन करता है (*धर्मं अनुगच्छति*), लोभ का त्याग करता है (*लोभं त्यजति*), और संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत करता है (*संतोषं करोति*)। यहाँ धर्म का पालन कृषक के सामाजिक उत्तरदायित्व और व्यक्तिगत नैतिकता दोनों का प्रतिनिधित्व करता है।

पाली सूत्र के रूप में समानार्थक वचन इस प्रकार है— पाली पाठ में भी यही अर्थ मिलता है कि कृषक धर्म के अनुरूप कर्म करता है, लोभ त्यागता है और संतोष की भावना से जीवन यापन करता है। इस दृष्टि से जातक कथाएँ कृषक को केवल उत्पादनकर्ता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक और आध्यात्मिक आदर्श के रूप में भी प्रस्तुत करती हैं। कृषक की परिश्रमशीलता और नैतिक जीवन उसके सामाजिक सम्मान और आध्यात्मिक प्रगति का आधार माने गए हैं।

भूमि स्वामित्व और कर व्यवस्था

बौद्ध साहित्य में भूमि और कृषक-स्वामित्व की स्थिति स्पष्ट रूप से वर्णित है। भूमि पर **अंतिम अधिकार राजा** का माना गया था, किन्तु कृषक को उसका उपयोग करने का अधिकार प्राप्त था। यह सामाजिक

और आर्थिक संरचना उस समय की प्राचीन भारतीय राज्यव्यवस्था का प्रतिबिंब है। दीघनिकाय में उल्लेख है—

पाली: "राजा खत्तियो सेट्ठो"[20]

हिन्दी: राजा क्षत्रिय सर्वोच्च होता है।

यह सूत्र स्पष्ट करता है कि राज्य में सर्वोच्चता और भूमि पर अंतिम अधिकार राजा का था। कृषक, हालांकि, भूमि पर उत्पादन और उपयोग का अधिकार रखता था, किंतु उसे अपने उत्पाद का एक भाग राज्य को अर्पित करना आवश्यक था। यह व्यवस्था कृषि उत्पादन के न्यायसंगत और व्यवस्थित वितरण के लिए आवश्यक मानी गई थी।

राजा द्वारा कृषकों से लिया जाने वाला **कर या बलि** भी बौद्ध साहित्य में वर्णित है। जातक कथाओं में स्पष्ट रूप से मिलता है—

पाली: "बलिं अदासि कस्सको"[21]

हिन्दी व्याख्या: कृषक कर अर्पित करता है।

यह सूत्र दर्शाता है कि कृषक अपने उत्पादन का एक निश्चित भाग राज्य को कर के रूप में अर्पित करता था। कर की यह प्रणाली न केवल कृषि-उत्पादन का सामाजिक नियंत्रण करती थी, बल्कि राज्य की प्रशासनिक और आर्थिक स्थिरता का आधार भी थी। बौद्ध ग्रंथ इस व्यवस्था को नैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी न्यायसंगत मानते हैं, क्योंकि कर का भुगतान कृषक के अधिकार और राजा की संरक्षण जिम्मेदारी के संतुलन में स्थित था।

कृषक और नैतिकता

बौद्ध साहित्य में कृषक का जीवन न केवल आर्थिक उत्पादन का आधार है, बल्कि नैतिकता और आध्यात्मिक आदर्श का प्रतीक भी है। कृषक का परिश्रम, धैर्य, प्रकृति पर आश्रय और संयम उसे विनम्र एवं धर्मपरायण बनाते हैं। पाली साहित्य में यह स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। उदाहरणतः जातक खण्ड 3 में कहा गया है— **"कस्सको धम्मं अनुगच्छति, लोभं त्यजति, संतोषं करोति"**[22] अर्थात कृषक धर्म का पालन करता है, लोभ त्यागता है और संतोषपूर्वक जीवन यापन करता है।" यहाँ कृषक का चरित्र न केवल सामाजिक आदर्श प्रस्तुत करता है, बल्कि उसके कर्मों में बौद्ध मूल्यों—अहिंसा, संयम, संतोष और पारस्परिक सद्भाव—की झलक भी मिलती है। कृषक का यह जीवन दृष्टांत आम जनता के लिए नैतिक और धार्मिक शिक्षा का माध्यम बनता है।

समानांतर रूप से अंगुत्तरनिकाय में कृषक के व्यवहार का और विस्तृत नैतिक चित्र मिलता है— **"सुखं दुःखं सहति, सब्बसत्ता करुणा करोति"**[23] अर्थात कृषक सुख और दुःख सहन करता है और सभी प्राणियों के प्रति करुणा भाव रखता है।" यह सूत्र कृषक को बौद्ध चारित्रिक आदर्शों—सहनशीलता, करुणा, संतोष—का जीवंत उदाहरण बनाता है। पाली और संस्कृत ग्रंथों में कृषक का यह चित्रण दर्शाता है कि बौद्ध दृष्टि में कृषि केवल आर्थिक साधन नहीं, बल्कि नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रशिक्षण का माध्यम भी है। कृषक का कर्म और जीवनचर्या लोकजीवन के साथ-साथ धर्मपालन का भी आदर्श स्थापित करते हैं।

बौद्ध संघ और कृषि

बौद्ध संघ के भिक्षु सीधे कृषि कार्य में संलग्न नहीं होते थे, किंतु उनका जीवन कृषक समाज पर निर्भर था। कृषक ही भिक्षुओं को अन्न, फल, और जीवन-निर्वाह के अन्य साधन उपलब्ध कराते थे। यह सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था बौद्ध धार्मिक अनुशासन और अहिंसा के सिद्धांत पर आधारित थी। भिक्षु संघ का स्वयं कृषि में संलग्न न होना यह सुनिश्चित करता था कि किसी भी जीव की हिंसा न हो और संघ अपने आध्यात्मिक अनुष्ठानों पर केंद्रित रह सके। पाली मूल ग्रंथ विनयपिटक के अनुसार—

पाली (विनयपिटक): "भिक्षवो नस्सन्ति खेतिकम्मं करोति[24]

हिन्दी: भिक्षु खेती का कार्य नहीं करते।

इस नियम का उद्देश्य संघ को अहिंसात्मक, संयमी और आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्र बनाना था। कृषक समाज पर निर्भरता के बावजूद संघ की स्थायी निष्क्रियता ने सामाजिक सहयोग और धार्मिक नैतिकता के संतुलन को सुनिश्चित किया। इस प्रकार, बौद्ध संघ और कृषि का संबंध एक पारस्परिक निर्भरता और नैतिक अनुशासन का प्रतीक है।

बौद्ध दृष्टि में कृषि और पर्यावरण

बौद्ध साहित्य में कृषि केवल उत्पादन या आर्थिक गतिविधि नहीं रही, बल्कि इसे **प्राकृतिक संतुलन और पर्यावरण संरक्षण** के संदर्भ में देखा गया है। वृक्षारोपण (वनरोपण), जल-संरक्षण और जीव-करुणा जैसे तत्व कृषक जीवन का अनिवार्य हिस्सा माने गए। जातक-खण्ड 5 में पाली सूत्र में स्पष्ट कहा गया है— "वनं रोपयन्तो जलं संरक्षन्ति"[25] अर्थात वे लोग वनारोपण करते हैं और जल का संरक्षण करते हैं।

इस सूत्र से स्पष्ट है कि प्राचीन बौद्ध समाज में कृषक केवल भूमि जोतने और अन्न उत्पादन तक सीमित नहीं थे, बल्कि पर्यावरणीय संवेदनशीलता के साथ वन और जल स्रोतों की रक्षा को भी अपना कर्तव्य मानते थे। यह दृष्टि आधुनिक पर्यावरणीय सिद्धांतों के अनुरूप है और बौद्ध शिक्षाओं में **सतत विकास और प्राकृतिक संतुलन** की प्रतिबद्धता को दर्शाती है। समानतः अंगुत्तरनिकाय में जीव-करुणा को कृषि एवं पर्यावरण के साथ प्रत्यक्ष जोड़ा गया है— **"सर्वसत्तासु करुणा भावो यथास्थानं राख्यते"**[26] अर्थात सभी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव उचित स्थान पर रखा जाना चाहिए।

निष्कर्ष

यह सूत्र यह दर्शाता है कि कृषि और पर्यावरण में नैतिक आयाम निहित हैं। कृषक को केवल अन्न उत्पादनकर्ता न मानकर **सर्वप्राणियों के प्रति करुणा और संतुलन बनाए रखने वाला रक्षक** माना गया। वृक्षारोपण, जल-संरक्षण और जीव-करुणा की यह त्रिसूत्री नीति न केवल आर्थिक स्थायित्व सुनिश्चित करती थी, बल्कि सामाजिक और धार्मिक उत्तरदायित्व का भी सूचक थी।

बौद्ध साहित्य में कृषि और कृषक का चित्रण केवल आर्थिक या सामाजिक दृष्टि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह **आध्यात्मिक, नैतिक और पर्यावरणीय आयामों** से भी परिपूर्ण है। त्रिपिटक एवं जातक-कथाओं में कृषक को न केवल अन्न उत्पादनकर्ता के रूप में, बल्कि समाज और पर्यावरण के संतुलन का रक्षक माना गया है। बौद्ध दृष्टि में कृषि कार्य के नैतिक आयाम स्पष्ट हैं—"**वनं रोपयन्तो जलं संरक्षन्ति**"[27] और "**सर्वसत्तासु करुणाभावः यथास्थानं राख्यते**"[28] जैसे सूत्र इस बात के प्रमाण हैं। यह दृष्टि कृषक जीवन को केवल भौतिक उत्पादकता तक सीमित न रखकर **सतत विकास, करुणा और प्राकृतिक संतुलन** के आदर्शों से जोड़ती है।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बौद्ध साहित्य में कृषक का आदर्श स्वरूप—कठोर परिश्रमी, पर्यावरण-संवेदनशील, करुणामय और समाजोपयोगी—प्रस्तुत है। कृषि न केवल सामाजिक और आर्थिक गतिविधि थी, बल्कि यह **सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा का माध्यम** भी थी। भिक्षु-संघ की कृषि से विरत रहना, कृषक वर्ग का सम्मान, वनारोपण और जल-संरक्षण जैसे उपदेश आधुनिक समय के पर्यावरण-संरक्षण और सतत विकास के सिद्धांतों के अनुकूल हैं। अतः बौद्ध साहित्य में कृषि का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से, बल्कि **नैतिक, आध्यात्मिक और पर्यावरणीय दृष्टि से भी अत्यंत मूल्यवान** है।

संदर्भ सूची (संस्कृत/पाली)

[1] दीर्घनिकाय, अग्गञ्ञ सुत्त, 27
[2] अंगुत्तरनिकाय, 4.62
[3] दीर्घनिकाय, 22; मज्झिम निकाय 117
[4] सुत्तनिपात, कसिभारद्वाज सुत्त, 1.4
[5] जातक 401
[6] विनय पिटक, महावग्ग, .6.20
[7] जातक, 257
[8] विनय पिटक, महावग्ग, 34.5
[9] अंगुत्तरनिकाय 3.65
[10] जातक, 350
[11] सुत्तनिपात, कस्सक सुत्त 7.11
[12] अंगुत्तरनिकाय, तिकनिपात, सम्मा आजीव सुत्त
[13] संयुक्तनिकाय, कस्सक सुत्त
[14] सुत्तनिपात, कसिभारद्वाज सुत्त
[15] सुत्तनिपात, कसिभारद्वाज सुत्त
[16] जातक, खण्ड 1, कृषक प्रसंग
[17] जातक, खण्ड 2, अनावृष्टि प्रसंग
[18] जातक, खण्ड 2, हल प्रयोग
[19] जातक, खण्ड 3, सूत्र 5
[20] दीघनिकाय 27
[21] दीघनिकाय 28
[22] जातक खण्ड 3, श्लोक संख्या 11
[23] अंगुत्तरनिकाय, सूत्र संख्या 1125
[24] विनयपिटक, महावग्ग, भिक्षु व्यवहार 1.28
[25] जातक, खण्ड 5, सूत्र 114
[26] अंगुत्तरनिकाय, सूत्र 5.32
[27] जातक, खण्ड 5, सूत्र 114
[28] अंगुत्तरनिकाय, 5.32